सम्मति

ग्रंथ - काशी मरणान्मुक्ति

लेखकद्वय - श्री मनोज ठक्कर
श्रीमती रश्मि छाजेड़

अहिन्दी भाषी लेखकों द्वारा हिन्दी में उपन्यास लेखन का यह प्रयास सराहनीय है। काशी में मृत्यु होने से आत्मा मुक्ति को प्राप्त होती है और 'पुनरपिजननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्' के चक्र से जीव छूट जाता है। इसी अवधारणा के इर्द-गिर्द घूमती यह औपन्यासिक कृति अपने 68 अध्यायों में निर्मित होती है। जो लोग यह मानकर चलते हैं कि हिन्दी में महाकाव्यात्मक उपन्यासों का दौर समाप्त हो गया, उन लोगों के लिए यह पृथुल कृति एक सुखद (या दुखद) आश्चर्य से कम नहीं है। एक वर्ष के भीतर तीन-तीन संस्करणों का निकलना भी उन लोगों के लिए एक आश्चर्य है जो यह मानते हैं कि अब मोटे-मोटे उपन्यासों को पढ़ने का समय किसी के पास नहीं रहा।

यह कृति यह स्थापित करती है कि यदि लेखक के पास कहने को कोई कहानी है तो उसे पढ़ने-सुनने वाले स्रोता-पाठक की कमी नहीं है।

एक और दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण साबित होती है। वह हैं परम्परा का पालन करते हुये भी इसका लीक से हटकर चलने वाला कथानक। इस कृति में कई पिटे-पिटाए रास्तों का छोड़ा गया। इस कृति का नायक कोई उच्च कुलोत्पन्न व्यक्ति नहीं बल्कि एक अनाथ है, जिसके माँ-बाप और जाति-वंश का कोई अता-पता नहीं है। एक मल्लाह दंपत्ति के घर में पला इस उपन्यास का नायक 'महा' केवल नाम से ही महा नहीं है बल्कि अपने काम में भी महा अर्थात् है।

किसी ने कहा है कि कुछ लोग जन्म से महान् होते हैं, कुछ अपने कर्म से महान् बनते हैं और कुछ लोगों पर महानता थोप दी जाती है। इस कथा के नायक महा के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह अपने कर्म से महान् बना था। लेकिन इसके साथ ही यह भी सत्य है कि कहीं-न-कहीं वह जन्म से भी महान् था। तभी तो श्मशान में अकेले पड़े इस अबोध शिशु की सुरक्षा एक नाग कर रहा था। इन्हीं अलौकिक घटनाओं के कारण इस कृति में उसे भगवान शंकर का अवतार माना गया है। फिर आश्चर्य ही क्या क्योंकि अधिकांश अवतारी या देव अंशी पुरुषों की जन्म कथा कई संदेहों और अज्ञात तथ्यों से परिपूर्ण है। रामादि का जन्म माताओं के खीर खाने से होना, कृष्ण की जन्म कथा में मथुरा-गोकुल का चक्कर, ईसा मसीह का कुमारी कन्या के गर्भ से जन्म लेना, अगस्त्य का घड़े से उत्पन्न होना, आदि इसके उदाहरण हैं। कथा नायक महा के पालक पिता राघव एक मुस्लिम की नाव खेते हैं और उनका काम है श्मशान घाटों पर मुर्दों के जलाने के लिए लकड़ियाँ पहुँचाना। महा की माता एक दिन स्वप्न में देखती है कि महा चाण्डाल का काम कर रहा है और वास्तव में ही महा यह कर्म करने लगता है। महा अंत में पद्मासन की मुद्रा में निर्वाण को प्राप्त होता है।

यह उपन्यास काशी की सामासिक संस्कृति और साम्प्रदायिक सद्भाव की इसकी सुदीर्घ परम्परा का भी प्रतिनिधित्व करता है।

उपन्यास की भाषा तत्सम प्रधान है और हिन्दी के मानकीकृत रूप को स्पष्ट करती है। यद्यपि इसमें क्षेत्रीय एवं बोलचाल के शब्दों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं--

"स्वयं के क्रोध को संयत करने वाला ही सज्ञा सारथी है। इसके विपरीत अन्य सभी तो मात्र रास पकड़े स्वयं की काया रूपी बग्घी को डो रहे हैं। वास्तविक मननशीलता ही अमरत्व के राज्य का मार्ग है।" (पृ. 451)

x x x

"मैं त्रिनेत्र शिव ही स्वयं की इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूपी दृष्टियों को जीवों के मन में स्थित करता हूँ, जो जीवन-काया में प्रवेश कर जीव रूप हो, जानती एवं करती है।" (पृ. 372)

"मैं ही जगत् का कारण और जगद् रूप आदिपुरुष हूँ। मेरे अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं हैं, न कारण और न ही कार्य। मैं ही अपने कार्यरूप जगत् में स्वेच्छा से अनेक रूपों में प्रतीत होता हूँ।" (पृ. 256)

इस प्रकार के उदाहरणों से भरी यह कृति मानक हिन्दी के सज्ञे स्वरूप को सामने लाती है। इस उपन्यास की शैली भी विशिष्ट है। अध्याय के आरंभ में भगवान शिव की वाणी सुनाई देती है उसके बाद कथा का सूत्र आगे बढ़ता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अहिन्दी भाषी लेखकद्वय द्वारा प्रस्तुत यह कृति मूल हिन्दी भाषियों के लिए भी एक आदर्श प्रस्तुत करती है। हर दृष्टि से यह एक पठनीय ही नहीं बल्कि संग्रहणीय पुस्तक है।

28/9/12

(वीरेश कुमार)